स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः।

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्।

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्माको आनन्द प्रदायक । सब धर्मोंका श्रेष्ठ रीतिसे पालन करते जीव निरन्तर भक्ति अधोक्षजकी अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १८ | गौराब्द ४८६, मास—हृषीकेश २४, वार—वासुदेव रविवार, ३१ भाद्र, सम्वत् २०२९, १७ सितम्बर १९७२ | संख्या ४

सितम्बर १९७२

श्रीमद्भागवतीय श्रीकृष्णस्तोत्राणि

श्रीदेवकीदेवीकृतं श्रीरामकृष्णस्तोत्रम्

(श्रीमद्भागवत १०।८५।२९–३३)

सर्वलोक-पूजनीया श्रीदेवकीदेवी राम एवं कृष्णद्वारा यमालयसे गुरु सन्दीपनि मुनिके मृत-पुत्रके पुनः ले आनेकी बात सुनकर विस्मित हुई एवं कंसद्वारा मारे गये अपने पुत्रोंका स्मरण कर अश्रु-पूरित नयनोंसे राम-कृष्णका सम्बोधन कर कहने लगीं—

राम रामाप्रमेयात्मन् कृष्ण योगेश्वरेश्वर ।
वेदाहं वां विश्वसृजामीश्वरावादिपुरुषौ ॥२९॥

हे अप्रमेयस्वरूप राम ! हे योगेश्वरोंके अधीश्वर श्रीकृष्ण ! मैंने आप दोनोंको ब्रह्मादि विश्वकर्ताओंके भी नियन्ता सनातन पुरुषके रूपमें जान लिया है ॥२९॥

कालविध्वस्तसत्त्वानां राज्ञामुच्छास्त्रवर्त्तिनाम् ।
भूमेर्भारायमाणानामवतीर्णौ किलाद्य मे ॥३०॥

आप दोनों इस प्रकारसे जगदीश्वर होते हुए भी कालद्वारा जिनका सत्त्वगुण नष्ट हो गया है, जो शास्त्रमार्गके लंघनकारी हैं एवं जो पृथ्वीके भारस्वरूप हैं, ऐसे राजा लोगोंका वध करनेके लिये इस समय मेरे गर्भसे अवतीर्ण हुए हैं ॥३०॥

यस्यांशांशांशभागेन विश्वोत्पत्तिलयोदयाः ।
भवन्ति किल विश्वात्मंस्तं त्वाद्याहं गतिं गता ॥३१॥

हे जीव, जगत एवं सभीके अन्तर्यामी ! हे आदिपुरुषो ! जिनके अंशस्वरूप महावैकुण्ठनाथ नारायणके अंश महापुरुष (कारणोदकशायी महाविष्णु) के भी अंशसे उत्पन्न प्रकृतिके अंश-परमाणुद्वारा इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार-कार्य होता है, उन्हीं आप दोनोंका मैं आश्रय ग्रहण कर रही हूँ ॥३१॥

चिरान्मृतसुतादाने गुरुणा किल-चोदितौ ।
आनिन्यथुः पितृस्थानाद् गुरवे गुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

आप दोनोंने गुरुद्वारा बहुत समय पहले उनके मृत पुत्रको पुनः लानेकी आज्ञा पाकर यमालयसे उनके मृत पुत्रको लाकर दक्षिणाके रूपमें उसे उनको अर्पण किया था ॥३२॥

तथा मे कुरु तं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ ।
भोजराजहतान् पुत्रान् कामये द्रष्टुमाहृतान् ॥३३॥

अतएव आप दोनों कंसद्वारा मारे गये मेरे पुत्रोंको पुनः लाकर मुझे दर्शन करायें—ऐसी ही मेरी इच्छा है । अतः योगेश्वराधिपति आप दोनों मेरी अभिलाषाको पूर्ण करें ॥३३॥

॥ इति देवकीदेवीकृतं श्रीरामकृष्णस्तोत्रं समाप्तम् ॥
॥ इति देवकीदेवीकृत श्रीरामकृष्णस्तोत्र समाप्त ॥

श्रीश्रीराधाष्टमीका माहात्म्य

श्रीमद्भागवतके पाठक लोग जिनके एकमात्र सेवक होनेकी निरन्तर आशा करते रहते हैं, श्रीमद्भागवतमें जिनके नाम का उल्लेख भी नहीं किया गया है, स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी सर्वस्व-स्वरूपा वे ही श्रीमती राधिका हमारे सभी प्रकारके अहंकारोंका विनाश कर हमें उनके पदतलमें आश्रय प्रदान करें।

आज उन्हीं परम गोपनीया एवं परम पूजनीया देवीका आविर्भाव दिन है। जो सभी प्राणियोंको भगवानके नाना प्रकारके प्रसाद संग्रह कर देनेके लिए सर्वदा महा-उत्कण्ठिता हैं, वे ही महावदान्या या महान् दाता-स्वरूपिणी श्रीमती वृषभानुनन्दिनी हमारे हृदयमें आविर्भूता—प्रकटित हों। उनका आविर्भाव हमारे लिए परम आराधनाका विषय हो।

हमने साधारण रूपसे लोगोंके निकट सुन रखा है कि गोविन्दवस्तु भगवान् श्रीकृष्ण समस्त पृथिवीका पालन करते हैं। वे ही गोविन्द भगवान् जिन्हें अपना सर्वस्व समझते हैं, उन वस्तु श्रीमती राधिकाजीका आनुगत्य छोड़कर हम 'सर्व' शब्दका अर्थ पूरी तरह उपलब्ध नहीं कर सकते। 'स्व' शब्दसे—अपना, 'स्व' शब्दसे—धन। जो गोविन्दके 'स्व' अर्थात् अपने हैं, और जो गोविन्दके 'स्व' अर्थात् धन हैं। गोविन्दके सभी धन वे हैं, जिस धनसे गोविन्द धनी है। वे वस्तु गोविन्दकी सर्वस्व-वस्तु हैं। वे यदि हमारी आराधनाके विषय हों, तो आराधना क्या वस्तु है, यह समझ सकेंगे।

भगवद्वस्तु ही भजनीय वस्तु हैं, यह बात सभी शास्त्रोंमें स्पष्ट शब्दोंमें एवं उच्च स्वरसे गान की गई है। उन भगवान्को छोड़कर दूसरी कोई वस्तु 'आराध्य' शब्द-वाच्य नहीं हो सकती। हमारी तात्कालिक अज्ञानताके कारण उस वस्तुका अनुसन्धान-रहित होकर हम उनके प्रेमसे वंचित होते हैं। उस समय अनर्थ आकर उस वस्तु की अन्य वस्तुके रूपमें भ्रान्ति उत्पन्न करा देते हैं। हमें जिस अर्थ या वस्तु की परम आवश्यकता, उसका विपरीत विषय ही 'अनर्थ' है। हमारे मनोऽभीष्ट प्राप्य अर्थ या सिद्धिकी यदि सेवा न करें, सेवा-विषयमें यदि शिक्षा न प्राप्त करें, तो हम अपने अहंकारके वशीभूत होकर सेव्य-वस्तु भगवान्के बदले और किसी वस्तुकी सेवा कर बैठेंगे।

भगवत्प्रेम ही एकमात्र आराध्य है, यह बात भली प्रकार जिनसे जान पाते हैं, उनके गणोंमें गिने जानेकी प्रबल आशासे जीवित रहेंगे, नहीं तो हजार बार मर जाना ही हमारे लिए अच्छा है। हमारे परमाराध्यतम श्रीश्रील रघुनाथदास गोस्वामी इस प्रकार श्रीराधा-कृष्णसे प्रार्थना करते हैं—

आशाभरैरमृतसिन्धुमयैः कथंचित्
कालो मयातिगमितः किल साम्प्रतं हि ।
त्वंचेत् कृपां मयि विधास्यसि नैव किं ते
प्राणैर्व्रजेन च वरोरु बकारिणापि ॥
हा नाथ ! गोकुलसुधाकर ! सुप्रसन्न-
वक्त्रारविन्दमधुरस्मित ! हे कृपार्द्र !
यत्र त्वया विहरते प्रणयैः प्रियाया-
स्तत्रैव मामपि नय प्रियसेवनाय ॥

अर्थात् हे वरोरु (सर्वश्रेष्ठा) राधिके ! इस समय मैंने अमृतसागर रूप आशा समूहमें निश्चय ही अत्यन्त कष्टसे किसी प्रकार अपना समय बिताया है । यदि आप कृपा न करें, तो इस प्राण या व्रजवास, अधिक क्या कहें, बकारि श्रीकृष्णकी भी मुझे आवश्यकता नहीं है ।

हे नाथ ! हे गोकुलके चन्द्रमा ! हे सुप्रसन्न मुखारविन्दवाले ! हे मधुर मुस्कानवाले ! हे कृपाके समुद्र श्रीकृष्ण ! जिस स्थानमें तुम्हारे साथ प्रणयका विस्तार करते हुए तुम्हारी प्रिया-शिरोमणि श्रीमती राधिका विहार कर रही हैं, मुझे भी प्रिय-सेवा करानेके लिए उसी स्थानमें ले जाओ ।

भक्तगणोंकी यह जो एकमात्र अभिलषणीय आशा है, वह अमृत-सिन्धुमयी आशा किसी समय अवश्य पूरण होगी, इसी आशासे जीवन-धारण करना प्रयोजन है, ऐसा समझता हूँ । किन्तु हमारी उत्कण्ठा नहीं बढ़नेके कारण वह आशा पूर्णता प्राप्त नहीं कर रही है, आशाकी सफलता नहीं हो रही है । वह आशा यदि आज भी पूर्ण न हो, आज भी यदि गोविन्द-सर्वस्व श्रीमतीका आविर्भाव हृदयमें न हो, तो हम वञ्चित हैं, हमारे जैसे भाग्यहीन व्यक्ति जगत्के इतिहास में नहीं पाये जायेंगे । भगवान्का धाम, भगवद्वस्तु—समस्त ही जिनकी कृपासे प्राप्त होते हैं, उनकी सेवासे यदि वञ्चित हों, यदि उनका परिचय न प्राप्त करें, श्रीमद्भागवतके अठारह हजार श्लोक पाठ करते समय उनका सन्धान यदि प्राप्त न करें, तो श्रीमद्भागवत पाठ करना व्यर्थ हुआ ।

उनके परिचयसे परिचित होकर श्रीगौरांग महाप्रभुने हमें जो उन्नत उज्ज्वल रसकी बात बतलायी है एवं भागवतकी सेवा कितने प्रकारसे की जा सकती है, अविमिश्रा या शुद्ध सेवा किस प्रकार की जा सकती है, यह बात जब उन्होंने कही है,तब ही हम 'उज्ज्वल-रस' नामक क्रियाको समझ सके हैं एवं व्यतिरेक या असाक्षात्रूपसे अनुज्ज्वल रसका कार्य—क्षीण एवं तुच्छ रसकी क्षुद्रता एवं अनुपादेयता (अप्रयोजनीयता) भी जान पाये हैं ।

भगवान्की सेवा करनेके लिए भगवान्ने स्वयं कितने प्रकारसे अपना परिचय दिया है ! किन्तु भगवान्की भली प्रकारसे सेवा कर जो भगवान्की भी सेव्य-वस्तु हुई हैं, उन श्रीमती राधिकाको सब प्रकारसे जानना आवश्यक है । जो लोग उनके स्तव करनेवाले हैं, वे ही उनकी सेवामें हमें अधिकार दे सकते हैं, उनके पादपद्मोंमें हमारी आत्माके अनुरागको प्रकटित कर सकते हैं, लिए सेवा करनेकी बुद्धि एवं शक्ति उनके अनुगत प्रिय व्यक्तियोंके संग द्वारा प्राप्त होती है, उनकी सेवा ही हमारे लिए परम आवश्यक विषय है, यह बात उपलब्ध होती है ।

ये वस्तु भगवान्के सर्वस्व हैं, ऐसा महाजनोंके उपदेशोंसे जब जान सकते हैं, तब आराधना कार्यकी सुष्ठुता एकमात्र उन

वस्तुमें ही है, ऐसा जानकर उनकी सेवाके लिए अग्रसर होते हैं। आजसे—उनके आविर्भाव दिनसे यदि हम उनकी दासतामें नियुक्त हों, तो हम परम मंगलके अधिकारी बन सकेंगे।

हम सभी चरम-मंगल प्रार्थी हैं, ऐसी बात नहीं। किन्तु किसी अज्ञात सुकृतिद्वारा यदि परम मंगलकी आकर-स्वरूपा वृषभानुनंदिनी श्रीमती राधिकाके गणोंमें से किसीके संगमें उनकी अकृत्रिम सर्वोन्नत बात वास्तवमें सुननेका यथार्थ सौभाग्य प्राप्त हो, तो हमें भी चरम मंगलके पथपर यात्रा करनेकी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

जो अखिल रसामृतमूर्त्ति-स्वरूप नंदनंदन श्रीकृष्णकी सर्वस्व-स्वरूपा हैं, उन श्रीमती राधिकाकी सेवा एवं उनके अनुगत जनोंकी सेवासे वञ्चित होकर कदापि गोविन्द-सेवामें अधिकार प्राप्त नहीं होता। पहले श्रीमती राधिकाका परिचय पानेके लिये उनके नामका परिचय पाना आवश्यक है। किन्तु श्रीमद्भागवत पाठ करते समय तात्कालिक रूपसे उनका नाम देख नहीं पाते; केवल उनके रूपकी बात, गुणकी बात, पारकर-वैशिष्ट्य और लीला-कथाकी आलोचना देख पाते हैं। गोविन्द-सर्वस्व श्रीमती राधिकाका नाम छोड़कर और सभी बातें श्रीमद्भागवतमें पाते हैं। नाम (श्रीमतीका) श्रीमद्भागवतमें नहीं कहा गया है।

भगवान्‌ने आदि-पुरुष ब्रह्माको ये सभी बातें कहीं थीं। किन्तु कालके प्रभावसे जरा-मरण धर्मके वशीभूत विचार-प्रणाली द्वारा साधारण लोग भगवान्‌की बात विस्मृत हो गए थे। भगवान्‌ने कहा था—

ज्ञानं मे परमं गुह्यं यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदंगंच गृहाण गदितं मया॥

(भा० २।९।३०)

भगवान्‌ने ब्रह्मासे कहा था—मैं कह रहा हूँ, तुम सुनो और ग्रहण करो। मेरा ज्ञान परम गोपनीय है। विज्ञानसे युक्त ज्ञान, रहस्यके सहित ज्ञान परम गुह्य है। रहस्य—'रहसि स्थितः'—बाहरके विचारद्वारा उन्हें जाना नहीं जा सकता, हम रहस्यांगको जान नहीं सकते। बहिर्जगतकी चिन्ता धारामें भूले हुए हैं। अतएव आत्मविद् व्यक्तियोंके चरणाश्रय ग्रहण करनेकी परम आवश्यकताको हम पूरी तरहसे भूल गए हैं। वह ज्ञान देनेके लिए भगवान् सर्वदा प्रस्तुत हैं।

भगवान्‌ने ब्रह्माको कहा—मेरी कृपाके बिना किसीका श्रवण करनेमें या ग्रहण करने में अधिकार नहीं है। मेरी कृपाद्वारा केवल वे ही यह रहस्य-ज्ञान प्राप्त करेंगे, जो लोग मेरी बात श्रवण करेंगे। मैं जिस प्रकार हूँ, मेरा जो रूप है, मेरा जो स्वरूप है, मेरे जो गुण हैं, मेरे जो परिकर-वैशिष्ट्य एवं लीलादि हैं—साधारण भावनाके पथका अतिक्रम कर जो अप्राकृत रसमयी लीलाएँ हैं, उन्हें मेरी कृपा शक्तिके बिना पाया नहीं जा सकता। सभी सद्‌गुणोंका एकमात्र आधार मैं जो हूँ, (रजस्तमोमिश्र सद्‌गुणोंकी बात नहीं कह रहा) जो जन्म-स्थिति-भंगका कारण बनकर स्थित है, वह गुण-विशिष्ट और कार्यका कारक मैं जो हूँ, मैं जो मूल आकर-वस्तु हूँ, ऐसे मुझे मेरे अनुग्रह द्वारा जाना जा सकता है। इसलिए श्लोकमें 'मदनुग्रह' शब्दका

ज्ञानकी बात चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवतके प्रारम्भमें स्पष्ट रूपसे व्यक्त की गई है। श्रीगौरांग महाप्रभुने उसे जगत्के निकट उद्घाटन कर बतलाया है। अतएव हम भाग्यवान हैं। यह जो रहस्यकी बात कह रहे हैं, जिनको लेकर यह रहस्य है, उनका नाम उच्चारण नहीं किया है। वह बात रहस्य होनेके कारण अनभिज्ञ मूर्ख व्यक्तियोंके निकट प्रकाश करने योग्य न होनेके कारण प्रकाश नहीं किया। ये सभी व्यक्ति भागवतमें वर्णित नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी लीलाकी बात सुनकर उनके प्रति श्रद्धायुक्त होना तो दूर रहे, उल्टे इन सभी बातोंको छोड़कर जड़की धारणाके अनुकूलमें निर्विशेष भाव-मात्रका विचार करते हैं। कोई तो उनमें विलीन होना युक्तियुक्त समझते हैं। श्रवणकी कमीके कारण तात्कालिक दर्शन कर ऐसा विवर्त्त उपस्थित होता है। प्रचुर परिमाणमें भगवान्की सेवा-विमुखता रहनेके कारण भगवद्भक्तिकी बात जाननेमें वे योग्यता प्राप्त नहीं करते। हमारे सत्त्वोज्ज्वल हृदयमें रसमयी परमेश्वरीका आविर्भाव-दिन बड़े भाग्यसे उपस्थित हुआ है। भ्रमणकारी सूर्य परम पूजनीया परमेश्वरी का प्राकट्य सर्वत्र प्रकाश कर रहे हैं। इसलिए देवता भी रहस्य-उद्घाटन करनेके लिए हमारे परम अनुकूल हैं।

हमारा कर्त्तव्य है—रहस्यविद् व्यक्तिके शरणागत होना। मनोहरदास नामक भक्त कहते हैं—

राधा-पद-पंकज भकत कि आशा।
दास मनोहर करो त' पियासा॥

श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंकी अभीष्ट वस्तु एकमात्र राधापद-सेवा है—

श्रीराधापददास्यमेव परमाभीष्टं हृदा धारयन्।
कर्हिस्यां तदनुग्रहेण परमाद्भुतानुरागोत्सवः॥

श्रीजयदेवजीने भी कहा है—

कंसारिरपि संसार-वासना बद्ध-शृङ्खलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज व्रजसुन्दरीः॥

अर्थात् कंसारि श्रीकृष्णने संसार-वासना (रास-लीलाकी इच्छाकारिणी) एवं तद्संकल्प-युक्ता श्रीमती राधिकाको अपने हृदयमें धारण कर व्रजसुन्दरी गोपियोंका त्याग किया।

रासस्थलीमें सभी गोपियाँ उपस्थित थीं। गोपीनाथ श्रीकृष्ण रसक्रीड़ामें प्रमत्त थे। श्रीमती राधिकाने रासस्थलीमें उपस्थित होकर देखा कि असंख्य गोपियाँ मंडली-नृत्यमें भगवात्की सेवामें नियुक्त हैं। यह देखकर उन्होंने सोचा—'आज मेरे कृष्ण दूसरोंके अधीन हैं। मेरे अनुगत व्यक्ति आज संभोग-रसमें व्यस्त हैं।' अतएव उनके संभोग रसके पुष्टिकारक विप्रलम्भ भावको बढानेके लिए श्रीमती राधिकाजी रास-लीलामें योगदान करनेके बदले दूसरे स्थानमें चली गईं। राधिकाजीका आनुगत्य परित्याग कर कृष्णेन्द्रिय-प्रीति-विधानकी जो निपुणता देखी जाती है, वह ऐकान्तिकी कृष्णसेवा-परायण चित्तवृत्तिकी अनुगामिनी नहीं है। सभी गोपियाँ राधिकाजीके कायव्यूह होनेपर भी कृष्णसर्वस्व श्रीराधिकाजीके अनुगता एवं उनकी दास्याभिमानिनी होनेपर कृष्णका सर्वोत्तम आनन्द-विधान कर सकती हैं—

श्रीमान् रासरसारम्भी वंशीवटतटस्थितः।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः।

रास-रस-प्रवर्त्तक, वंशीवट-स्थित श्रीमद्गोपीनाथ वेणुध्वनि द्वारा सभी गोपियों का आकर्षण कर रहे हैं। वे हमारा मंगल-विधान करें। गोविन्दके अपने सर्वस्व श्रीमती राधिकाका आनुगत्य रहित जो संभोगका विचार है, वह हमारे ग्रहण करने योग्य नहीं है, यह बतलानेके लिए श्रील जयदेवजीने श्रीमद्भागवतका परिशिष्ट-विचार उद्घाटन कर कहा है—"तत्याज व्रजसुन्दरीः।"—रास में नियुक्त सभी गोपियोंका परित्याग कर श्रीकृष्ण श्रीराधिकाजीको हृदयमें धारण कर उनके अनुसन्धानके लिए चल पड़े। सभी गोपियोंके प्रेमका बन्धन क्षीण, दुर्बल एवं अरक्षणशील है। श्रीमती वृषभानु-नन्दिनीकी प्रेम-शृङ्खलामें प्रचुर शक्ति है, अतएव बहुत ही कठिन है। तब वे सभी गोपियाँ श्रीमती राधिकाके अधिरूढ़ महाभावाश्रिता होकर—मोहन-मादनादि भावयुक्ता होकर कृष्णान्वेषण में तत्पर हुईं। वे सभी यह समझ पायीं कि गोविन्द-सर्वस्व श्रीमती राधिकाके चरणाश्रय के बिना मधुर-रस सम्पूर्ण रूपसे पुष्टि-प्राप्त नहीं कर सकता। विभिन्न गोपियाँ जिन सभी भावोंसे युक्त होकर सेवा करती हैं, वे सभी भाव एक साथ श्रीमती राधिकाजीमें एवं उनकी परिपूर्णता भी एकमात्र उनमें ही रहने के कारण प्रोषितभर्तृकादि किसी-किसी एक भावयुक्त सभी गोपियोंका परित्याग कर पूर्णभावोंसे परिपूर्ण श्रीमती राधिकाजीके आकर्षणमें आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण चले गये, सबसे आकर्षक वस्तुको जो वस्तु आकर्षण करती है, उसके अनुसन्धानमें चले गये। गोपियाँ श्रीमती राधिकाजीकी कायव्यूहरूपा हैं एवं अंशिनीके आंशिक-विचारमें प्रतिष्ठित होनेके कारण, सम्पूर्ण श्रीमती राधिकाके सम्पूर्ण भावसे कृष्णका बन्धन नहीं कर पानेके कारण सभीके आकर्षक वस्तु कृष्णको राधिकाजी रासस्थलीसे ले गईं। जिनकी आत्मवृत्तिमें मधुरा रति उदित हुई है, वे ही ये सभी बातें समझ सकते हैं। जिनके हृदयमें वात्सल्य-रसकी प्रबलता है, वे भी सम्पूर्ण लीला-माधुरीको समझ सकते हैं।

मुरली-माधुरीसे आकृष्टा सभी गोपियाँ कृष्णाकृष्ट होकर रासस्थलीमें सम्मिलित होती हैं। मधुरा रतिकी पूर्ण-विग्रहरूपिणी श्रीमती राधिका जब सेवा करनेके लिए इच्छुक होती हैं, तब हमारे सेव्य-वस्तु नन्दनन्दन गोपीनाथ राधारमण और सभी गोपियोंका साधारण आकर्षण परित्याग कर श्रीमती राधिकाके आकर्षणकी वस्तु होते हैं—आकर्षक वस्तु स्वयं आकृष्ट हो जाते हैं। इसलिए राधिकाजीकी पदवीकी आलोचना करनेका अधिकार जब मुक्त जीव प्राप्त करते हैं, तब वे यह समझ सकते हैं—

कर्मिभ्यः परितो हरेः
प्रियतया व्यक्तिं ययुर्ज्ञानिन-
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्त-भक्ति-
परमाः प्रेमैकनिष्ठास्ततः।
तेभ्यस्ताः पशुपालपंकजदृश-
स्ताभ्योऽपि सा राधिका
प्रेष्ठा तद्वदियं तदीय सरसी
तां नाश्रयेत् कः कृती॥१॥

कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः
प्रेयसिभ्योऽपि राधा
कुण्डं चास्या मुनिभि-
रभितस्तादृगेवव्यधायि ।
यत् प्रेष्ठैरप्यलमसुलभं
किं पुनर्भक्तिभाजां
तत् प्रेमेदं सकृदपि सरः
स्नातुराविष्करोति ॥२॥

अर्थात् समस्त प्रकारके कर्मियोंसे चिदनुसन्धानकारी ज्ञानी कृष्णके बड़े प्रिय हैं। समस्त प्रकार ज्ञानियोंसे ज्ञानविमुक्त भक्त श्रेष्ठ हैं एवं कृष्णके प्रिय हैं। सभी भक्तोंमें प्रेमनिष्ठ भक्त श्रीकृष्णके अधिक प्रिय हैं। सभी प्रेमी भक्तोंमें गोपियाँ श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया हैं। सभी गोपियोंमें भी राधिका सबसे अधिक प्रिया हैं। जिस प्रकार राधिका अत्यन्त प्रिया हैं, उनके कुण्ड भी कृष्णके अत्यन्त प्रिय हैं। अतएव जिनकी परम सुकृति है, वे अवश्य श्रीराधाकुण्डमें स्नान करते हुए श्रीकृष्णका अष्टकाल भजन करेंगे।

कृष्णकी अत्यन्त प्रियपात्री एवं प्रियावर्ग-की शिरोमणि श्रीराधिका हैं। श्रीमतीके कुण्ड-को शास्त्रोंमें मुनियोंने श्रीमतीके समान परमोत्तम कहकर वर्णन किया है। नारदादि प्रिय पार्षदोंके लिए भी जो प्रेम सुलभ नहीं है, दूसरे साधकोंके लिए तो दूरकी बात है। किन्तु एकबार मात्र राधाकुण्डमें स्नान करने पर वह प्रेम आविर्भूत होता है। प्रेमपूर्ण राधाकुण्डमें अप्राकृत वास एवं प्रेमामृत परिपूर्ण राधाकुण्डमें अप्राकृत स्नान अर्थात् जीव प्राकृत जड़-भोग-वासनामें उदासीन होकर श्रीमतीके ऐकान्तिक आनुगत्यमें मानस-भजन करते-करते जीवन रहते समय एव देह-त्यागके पश्चात् नित्यदेहसे साक्षात् नित्यसेवा प्राप्त कर कृतकृत्य होते हैं।

श्रीराधिकाजी श्रीकृष्णके अत्यन्त उन्नत प्रेमरूप प्रणयके निवासस्थान हैं एवं अन्य सभी प्रियाओंसे भी सब प्रकारसे श्रेष्ठा एवं प्रियतमा हैं। उद्धव आदि भक्त लोग तक भी जिनकी चरणधूलिकी प्रार्थना करते हैं, वे सभी गोपियाँ भी जिनका आनुगत्य पाकर अपनेको परम कृतार्थ मानती हैं, उन श्रीमती राधिकाकी क्रीड़ाभूमि एवं सरोवर राधाकुण्ड ही मधुरा रतिद्वारा आकृष्ट हैं। ये राधाकुण्ड श्रेष्ठ भगवद्भक्तिकी पराकाष्ठा जिन्होंने प्राप्त की है, उनके अवगाहन या स्नान अथवा विशेष अनुरक्तिके आश्रय हैं। वे लोग उस कुण्डमें अपनी नित्य चेतन-वृत्ति द्वारा निरंतर अवगाहन कर उस सरोवरके अधिवासी होते हैं। शैव्या, चन्द्रावलीकी अनुगता गोपियाँ जहाँ जानेका अधिकार प्राप्त नहीं करतीं, ऐसे कुण्ड-तीरमें, चेतनको नित्य वृत्ति द्वारा निरन्तर वास एवं अनुरक्तिपूर्ण दर्शन साधारण सौभाग्यवान् व्यक्तियोंको नहीं मिलता। जिस समयमें या अवस्थामें श्रीमती राधिकाकी अप्राकृत वयोवृद्धिका कौमार्य (सुकुमारता) और वयोधर्मकी हम आलोचना कर नहीं सकते, उस समयमें या उस अवस्थामें हम उनके आनुगत्यकी महिमाको जान नहीं सकते।

भागवत-पाठकोंके लिए भजनके हेतु नाम को जाननेकी आवश्यकता है। नामके द्वारा ही भजन होता है, लीलाके द्वारा पहलेसे भजन नहीं होता। अतएव श्रील जीव गोस्वामीपादने भी कहा है—

"प्रथमं नाम्नः श्रवणमन्तःकरण शुद्धयर्थमपेक्ष्यम्। शुद्ध चान्तःकरणे रूप-श्रवणेन तदुदययोग्यता भवति। सम्यगुदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्यते। सम्पन्ने च गुणानां स्फुरणे परिकरवैशिष्ट्ये न तद्वै शिष्ट्यं सम्पद्यते। ततस्तेषु नामरूपगुणपरिकरेषु सम्यक् स्फुरितेषु लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवतीत्यभिप्रेत्य साधनक्रमो लिखितः।"

अर्थात् सबसे पहले अन्तःकरण या चित्त की शुद्धिके लिए नामके श्रवण करनेकी आवश्यकता है। अन्तःकरणके शुद्ध होनेपर रूपका श्रवण करनेपर उसके उदयकी योग्यता होती है। रूपके भली प्रकारसे उदय होनेपर गुणोंकी स्फूर्त्ति होती है। गुणोंकी स्फूर्त्ति हो जानेपर परिकरवैशिष्ट्यकी स्फूर्त्ति होकर उसकी विशेषता सम्पन्न होती है। इस प्रकार नाम, रूप, गुण एवं परिकर-वैशिष्ट्यकी भली प्रकारसे स्फूर्त्ति होनेपर लीलाकी स्फूर्त्ति भली प्रकारसे होती है—यह बतलानेके लिए साधन-क्रम लिखा गया है। इसलिए हममें नामके आकर्षण द्वारा रस-ज्ञानका विचार जब तक नहीं आता, तब तक भगवानके रूप-गुण-लीलाके पाठका अधिकार नहीं है। जिन लोगोंने केवल बाहरी जगतकी शब्द-सिद्धि पायी है, ऐसे व्यक्तियोंका आचरण जब तक आत्मवेत्ताओंके आचरणसे भिन्न प्रकारका रहता है, तब तक भगवानकी रासलीलाकी बात उन लोगोंके लिए आलोचनाका विषय नहीं है। इसलिए श्रीमन्महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्य-देवने नाम-भजनकी बात कही है।

तारक-ब्रह्म नामके साथ 'हरे' शब्द देख पाते हैं। उसका यथार्थ मुख्य अर्थ न जानने तक असुविधा होती है। 'राम' शब्द विचार करने जाकर कई समय इतिहास सिरमें चढ़ जाता है। कई समय रूपकवाद, अध्यात्मवाद (केवल जीवात्मा सम्बन्धी विचार) परमेश्वरमें मनुष्यत्व-आरोपरूप कल्पनावाद आदि बुद्धि की पवित्रताको नष्ट कर देते हैं। जिन्हें रहस्य के ज्ञानका अभाव है, उनके राधागोविन्द-दर्शनके मध्यवर्त्ती स्थानमें परदा आ गिरता है। महामन्त्रमें जो 'हरे' शब्दका प्रयोग है, वह 'हरा' शब्दका सम्बोधनात्मक शब्द है, जो श्रीमती राधिकाको उद्देश करता है। महामंत्र में जो 'राम' शब्दका प्रयोग है, वह राधिका रमण रामका सम्बोधनात्मक पद है। जिनका मधुर या शृङ्गार रसमें प्रवेशाधिकार नहीं हुआ है, सरहस्य-ज्ञान नहीं प्राप्त हुआ है, वे लोग 'हरे' पदको 'हरि' शब्दका सम्बोधन पदमात्र समझते हैं, और कोई 'राम' शब्दका आत्माराम विचार मात्र कर शान्त हो जाते हैं।

'केवल-पुरुषोत्तम' का विचार करनेसे आधा परिचय ही देना हुआ। दूसरे आधेकी बात नहीं कहनेसे वे शब्द हमें वंचित करते हैं। पुरुषोत्तम-युगलकी धारणासे वंचित होकर शक्तिमान् एवं शक्तिका जो अभेद है, उस विचारका परित्याग कर पुरुषोत्तम विचार जो कुछ भी हो, वह भी बदलकर नपुंसक ब्रह्म-विचारमें आ जाता है।

राधागोविन्दके विचारमें परिपूर्णतमता है। केवलमात्र पुरुषोत्तम विचारमें आनुगत्य-धर्म वात्सल्य, सख्य एवं दास्यरस ही वर्त्तमान हैं। ऐसे व्यक्ति उन्नतोज्ज्वल रसकी आलोचना नहीं करते। राधानाथ, राधारमण आदि मुख्य शब्द जो पूर्णता प्रकाश करते हैं, उसे कदापि 'ब्रह्म', 'परमात्मा' शब्द स्थापन नहीं कर सकते। जो सभी व्यक्ति साधन-भक्तिके राज्यको पार-कर भाव-भक्तिके राज्यमें प्रेम-भक्तिका अनुसन्धान करते हैं, वे लोग प्रेम-भक्तिके उन्नत शिखरमें जो श्रीमती राधिकाजीका प्रेम है, वह और कहीं नहीं मिल सकता, ऐसा जान सकते हैं। उन श्रीमती राधाजीके आनुगत्यके बिना जीव तुच्छ विषयोंमें ही अधिकार प्राप्त करते हैं। जब हम देवी-धाम (जड़ जगत), विरजा, ब्रह्मलोक आदिको पारकर, परव्योमके समस्त विचारको भी पार कर, और तो क्या, गोलोकके विश्रम्भ-सख्य, वात्सल्यादिको भी पार कर हमारे नित्यसिद्ध आत्मस्वरूपमें राधारमणकी बात जान सकते हैं, तब हमारा अधिकार इतना उन्नत होता है कि हम धन्यातिधन्य हो जाते हैं, हम सेवाकी चरम सीमा प्राप्त करते हैं। उसे realisation या अनुभूति मात्र कहा नहीं जा सकता। ज्ञानो-की भाषाकी वह अपरोक्षानुभूति मात्र भी नहीं है। वह वस्तु मोहन-मादनका कार्य-विशेष है। उसे उद्घूर्णा, चित्रजल्प या महाभाव कहते हैं। स्थूल शरीरके रहते समय वह प्रचुर परिमाणमें बाधा देता है एवं सूक्ष्म शरीरकी अनुभूतिमें बाधा देता है। आत्म-वृत्तिद्वारा श्रीमती राधिकाजीके ऐकान्तिक एवं नैरन्तर्यमय आनुगत्यके बिना उसका संधान पाया नहीं जा सकता। अतएव हम श्रीरूपानुगवर श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुकी चरणरेणु मस्तकमें धारणकर लोभमयी यह प्रार्थना करते हैं—

हा देवि काकुभरगद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्त्तिः।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके तव गणे गणनां विधेहि॥

अर्थात् हे देवि! हे गान्धर्विके! मैं अत्यन्त दीनतापूर्ण एवं गद्गद वचनोंद्वारा भूमि पर गिरकर आपको बारम्बार प्रणाम करता हुआ आपके श्रीचरणोंमें यही प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझ जैसे अत्यन्त मूर्ख व्यक्ति पर कृपा कर मुझे अपने गणोंमें शामिल करने की कृपा करें।

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

(जीव-हिंसा)

१. पशु आदिकी हिंसा करनेकी दुष्प्रवृत्तिको किस प्रकार दूर किया जा सकता है ?

"मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि'—इस वेदवाक्यद्वारा पशु-हिंसाके लिए मना किया गया है। *** जब तक मनुष्य सात्त्विक होकर पशु-वध, स्त्री-संग की लालसा और आसव-सेवा आदिका परित्याग नहीं करते, तब तक वे उस-उस प्रवृत्तिको दूर करनेके लिए विवाहद्वारा स्त्रीसंग, यज्ञमें पशु-वध एवं विशेष-विशेष क्रियामें सुरा-पान करें। इन-इन उपायोंद्वारा उनकी बुरी प्रवृत्ति कम होने पर क्रमशः इन सब क्रियाओंसे उनको निवृत्ति होगी—वेदोंका केवल यही तात्पर्य है। पशु-वध करनेके लिए वेदोंमें आदेश नहीं दिया गया है।"

—जै० ध० १० म अ०

२. हिंसा वृत्ति क्या है ? कौन-कौनसी हिंसा बिल्कुल परित्याग करने योग्य है ?

"पापोंमें आसक्त व्यक्ति धर्मके विपरीत आचरण करते हुए अन्य व्यक्तिके प्रति ईर्ष्या और हिंसा प्रकाश करते हैं। हिंसा एक बहुत बड़ा पाप है। सभीके लिए ही हिंसा परित्याग करना उचित है। मनुष्यकी हिंसा करना तो अत्यन्त गुरुतर पाप है। जिस मनुष्यकी हिंसा की जाती है, उस मनुष्यके माहात्म्य तारतम्यद्वारा हिंसाकी गुरुता या लघुता जानी जाती है। ब्राह्मण-हिंसा, जाति-हिंसा, स्त्री-हिंसा, वैष्णव-हिंसा और गुरु-हिंसा—ये सभी हिंसाएँ अधिक परिमाणमें पापयुक्त हैं। पशु-हिंसा भी साधारण पाप नहीं है। उदरपरायण व्यक्ति स्वार्थके कारण जो पशु-हिंसा करते हैं, यह केवल मनुष्यकी अत्यन्त घृणित पशुताको ही दिखलाती है। पशु-हिंसाका परित्याग नहीं करनेसे मनुष्यका स्वभाव उज्ज्वल नहीं होता।"

—चै० शि० २।५

३. जीव-हिंसा भक्तिके प्रतिकूल क्यों है ?

"जीव-मांसके भोजन करनेके लिए अवश्य ही किसी न किसी प्रकारसे पर-हिंसा करनी पड़ती है। अतएव जिस कार्यमें ऐसी जीव-हिंसा हो, वह भक्तिके प्रतिकूल है।"

—'पर-हिंसा और दया' स० तो० ६।६

४. हरिभक्तमें परहिंसाका रहना क्या उचित है ?

"दूसरों की हिंसा करना सभी पापोंका मूल है, अतएव पर-हिंसा पापसे भी अधिक गुरुतर है। जो व्यक्ति बड़े सौभाग्यसे कृष्ण-भक्तिमें प्रवृत्त होते हैं, उनमें स्वभावसे ही पर-हिंसा करने की प्रवृत्ति नहीं रहती।"

—'पर-हिंसा और दया' स० तो० ६।८

५. कौनसा कार्य भक्तिके अनुकूल और कौनसा कार्य भक्तिके प्रतिकूल है ?

"जिस कार्यमें परोपकार है, वह कार्य ही भक्तिके अनुकूल है एवं जिस कार्यमें पर-हिंसा है, वही कार्य भक्ति बाधक या भक्तिके विरुद्ध है।"

—'पर-हिंसा और दया' स० तो० ६।८

६. हिंसा कितने प्रकार की है ? राग-द्वेषका व्यवहार किस प्रकार करना उचित है ?

"हिंसा तीन प्रकारकी होती है—नर-हिंसा, पशु-हिंसा और देव-हिंसा। द्वेषसे हिंसाकी उत्पत्ति होती है। किसी भोगोपयोगी विषयमें आसक्ति करनेका नाम ही राग है एवं किसी विषयसे विरक्ति प्रकाश करनेका नाम ही द्वेष है। उचित रागको पुण्य माना गया है। अनुचित रागको लम्पटता कहते हैं। द्वेष—रागका विपरीत धर्म है। उचित द्वेषकी भी पुण्यमें गणना की गई है। किन्तु अनुचित द्वेष ही हिंसा और ईर्ष्याका मूल कारण है।"

चै० शि० २।५

७. पशु-हिंसा क्या मानव-धर्म है ?

"वेदादि शास्त्रोंमें पशु-याग और बलि-दानकी जो व्यवस्था की गई है, वह केवल पशु-प्रवृत्तिको क्रमशः सङ्कुचित कर उसकी निवृत्तिके उपायके रूपमें ही कही गई है। वास्तवमें पशु-हिंसा पशुका ही धर्म है, मनुष्यका नहीं।"

—चै० शि० २।५

८. निष्ठुरता कितने प्रकारकी है और उसका क्या फल है ?

"निष्ठुरता दो प्रकार की होती है अर्थात् मनुष्यके प्रति और पशुके प्रति। नर-नारियोंके प्रति निष्ठुरता करनेसे संसारमें भयंकर उत्पात उपस्थित होते हैं, दयाका संसारसे लोप हो जाता है, एवं निर्दयतारूपी अधर्म संसारमें फैल जाता है।"

—चै० शि० २।५

९. पशुओंके प्रति निष्ठुरता क्या त्याग करने योग्य नहीं है ?

"आधुनिक क्षुद्र-क्षुद्र धर्मोंमें पशुओंके प्रति निष्ठुरता दिखलाई जा रही है। वह उन-उन धर्मोंके व्यवस्थापकोंकी कुख्याति प्रदर्शित कर रही है। साधारण विषय-लोभी मनुष्य गाड़ीके बैल और घोड़ेको जिस प्रकार कष्ट देते हैं, उसको देखनेसे दयालु व्यक्तियोंका हृदय विदीर्ण हो जाता है। उन सभी पशुओंके प्रति निष्ठुरता परित्याग करनी होगी।"

—चै० शि० २।४

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

—०—

सन्दर्भ-सार

(भक्ति-सन्दर्भ—२०)

भगवान् श्रीकृष्णने उद्धव से कहा था—हे उद्धव ! वेद नामक भगवद्वाणीमें सत्य सनातन धर्म वर्त्तमान है। कालक्रमसे वह प्रलयमें लुप्त होने पर मैंने ब्रह्माजीके निकट उसका कीर्त्तन किया था। चारों प्रलयमें भी भक्ति वर्त्तमान रहती है। सभी योगोंमें ही भक्ति वर्त्तमान है। सत्य युगमें ध्यान द्वारा त्रेता युगमें यज्ञानुष्ठान द्वारा एवं द्वापरमें अर्चन कार्य करनेसे जो कुछ पाया जाता है, कलिमें केवल नाम-संकीर्त्तन द्वारा वह सभी पाया जाता है।

विष्णुपुराणमें भी कहा गया है—

सा हानिस्तन्महच्छिद्रं
स मोहः स च विभ्रमः।
यन्मुहूर्त्त क्षण वापि
वासुदेवो न चिन्त्यते॥

जिस मुहूर्त्त या जिस क्षणमें भगवान् वासुदेवकी चिन्ता न हो, वह जीवोंके लिए महान् हानि एवं महादोष है तथा मोह और विभ्रमजनक है।

सभी अवस्थाओंमें ही भक्तिका अवस्थान है। माताके गर्भमें वास करते समय श्रीप्रह्लादको श्रीनारदजीने भक्तिकी बात श्रवण करायी थी। बाल्यकालमें ध्रुव, यौवन में अम्बरीषादि, वृद्धावस्थामें धृतराष्ट्रादि, मृत्युकालमें अजामिलादि एवं स्वर्गमें वास करने पर भी चित्रकेतु आदिमें भक्तिकी स्थिति देखी जाती है।

श्रीनृसिंह पुराणमें भी कहा गया है—

यथा-यथा हरेर्नाम कीर्त्तयन्ति स्म नारकाः।
तथा-तथा हरौ भक्तिमुद्वहन्तो दिवं ययुः॥

नारकी व्यक्तियोंने भी जिस-जिस भावसे हरिनाम कीर्त्तन किया था, वे लोग उस-उस भावसे ही हरिभक्तिका वरण करते-करते स्वर्ग (वैकुण्ठ) में गमन किये थे।

इसलिए भगवान्‌से दुर्वासाजीने कहा था—

मुच्येत यन्नाम्युदिते नारकोऽपि।
(भा० ६।४।७२)

आपका नाम उदित होने पर नारकी भी मुक्त होता है। श्रीपरीक्षित् महाराजसे श्रीशुकदेवजीने कहा था—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्त्तनम्॥

हे राजन् ! जो लोग संसारसे निर्वेद (वैराग्य) प्राप्त एकान्त भक्त हैं, जो व्यक्ति स्वर्ग-मोक्षादि कामना करते हैं एवं जो लोग आत्माराम योगीपुरुष हैं, सभीके लिए ही भगवान् श्रीहरिके नाम-गुणादिका बारम्बार श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरणको पूर्व आचार्यों

द्वारा परम साधन एवं साध्य बतलाया गया है।

व्यतिरेक (असाक्षात्) उदाहरणोंमें भी देखा जाता है—

किं वेदैः किम् शास्त्रैर्वा
किंवा तीर्थनिषेवणैः।
विष्णु-भक्ति-विहीनानां किं
तपोभिः किमध्वरैः॥

(बृहन्नारदीय पुराण)

विष्णु-भक्ति विहीन व्यक्तियोंका चारों वेद पढ़नेसे, शास्त्रादि अनुशीलनसे, तीर्थ-सेवाद्वारा, तपस्या एवं यज्ञादि अनुष्ठान द्वारा ही क्या होगा ? अर्थात् उनके लिए ये सभी कार्य व्यर्थ हैं।

किं तस्य बहुभिः शास्त्रैः
किं वा तपोभिरध्वरैः।
वाजपेय-सहस्त्रैर्वा
भक्तिर्यस्य जनार्दने॥

(पद्म-पुराण)

जिनकी भगवान जनार्दनमें भक्ति है, उनके लिए बहुतसे शास्त्रोंका अनुशीलन, तपस्याचरण, यज्ञानुष्ठान या हजारों वाजपेय यज्ञादियोंसे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? अर्थात् उसके लिए इन सब कार्योंके अनुष्ठान करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

राजर्षि परीक्षित्से श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मंत्रविदः सुमंगलाः।
क्षेमं न विन्दन्ति बिना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥

(भा० २।४।१७)

क्या तपस्वी, क्या दानी, क्या यशस्वी, क्या मंत्रवेत्ता, क्या सदाचारी पुरुष—कोई भी जिनको अपने अनुष्ठानादि समर्पण न कर कोई मंगल प्राप्त नहीं कर सकते, ऐसे मङ्गल-कीर्त्ति श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

(भा० ५।१६।२३)

जिस स्थानमें वैकुण्ठ-कथाकी सुधा-सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ भगवानके आश्रित साधु या भगवत्कथा-आलोचना परायण वैष्णव लोग वास नहीं करते, जहाँ नाम-संकीर्त्तनादिरूप विष्णु-यज्ञ एवं नृत्य-गीत-वाद्य-भक्तपूजनरूप महोत्सवादिका अनुष्ठान नहीं होता, वह ब्रह्म-लोक होने पर भी आश्रय-योग्य नहीं है।

ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः
पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम्।
सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महान्
अहो सुराणांच तमो धिगाढ्यताम्॥

(भा० १०।४६।४१)

जो देवेन्द्रने शिरके ऊपर स्थित मुकुटके अग्रभाग द्वारा बारम्बार साष्टांग प्रणाम करते हुए श्रीअच्युत (श्रीकृष्ण) के पादपद्मोंका स्पर्श करते करते भौम (नरकासुर) वधादि अभीष्ट-सिद्धिकी प्रार्थना की थी, उन्हीं इन्द्रने सफलकाम होकर अभी इस समय उन भगवान्के साथ युद्ध किया। अहो ! सत्वप्रधान देवताओंका भी कैसा तमो भाव है ! उनके ऐश्वर्य अहंकारको धिक्कार है !

माता देवहूतिके प्रति भगवान् श्रीकपिल-देवकी यह उक्ति है—

सालोक्य सार्ष्टि-सामीप्य
सारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृह्णन्ति
विना मत्सेवनं जनाः ॥

मेरे निष्काम भक्तोंको सालोक्य (भगवत्लोकमें वास), सार्ष्टि (समान ऐश्वर्य), सामीप्य (समीपमें वास), सारूप्य (भगवान्के समान रूप) एवं सायुज्य (ब्रह्मलय) रूप मुक्ति देनेकी इच्छा करने पर भी वे मेरी अहैतुकी सेवा परित्याग कर ये सभी ग्रहण नहीं करते ।

असुर बालकोंके प्रति श्रीप्रह्लादजीने कहा था—

न दानं न तपो नेज्या
न शौचं न व्रतानि च ।
प्रीयतेऽमलया भक्त्या
हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥
(भा० ७।७।५२)

निर्मला भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीहरि जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, उस प्रकार वे दान, तपस्या, पूजा, शौच (बाहरी पवित्रता), व्रतादि द्वारा वैसे प्रसन्न नहीं होते । क्योंकि श्रीहरिभक्तिको छोड़कर सब कुछ ही विडम्बना मात्र है ।

श्रीव्यासजीसे श्रीनारदजीने कहा था—

नैष्कर्म्यमप्यच्युत भाववर्जितं
न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे
न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥
(भा० १।५।१२)

नैष्कर्म्य (विशुद्ध ज्ञानयोग) भी यदि भगवद्भावसे रहित हो, तो ऐसे उपाधि-रहित (विशुद्ध) ज्ञान भी कदापि शोभा नहीं पाता । तब साधन एवं फलकालमें दुःखरूप कर्म निष्काम या सर्वोत्तम होने पर भी भगवान् श्रीहरिको अर्पण नहीं करने पर उसकी शोभा कैसे होगी ?

वैकुण्ठपति नारायणके प्रति चतुःसनकी उक्ति—

नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं
किम्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयस्ते ।
येऽङ्ग त्वदंघ्रिशरणा भवतः कथायाः
कीर्त्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥
(भा० २।१५।४८)

हे भगवन् ! आपका अप्राकृत यश ही एकमात्र कीर्त्तन करने योग्य है एवं परम पवित्र है । जो सभी बुद्धिमान् पुरुष आपके कथामृत-रसज्ञ एवं आपके पादपद्मोंमें शरणागत हैं वे मोक्ष नामके आपके चरण-प्रसादका भी जब आदर नहीं करते, तब आपकी भ्रूकुटिके प्रभावसे भय-प्राप्त इन्द्रादि देवताओंके पदकी तो बात ही क्यों करें ? अर्थात् भक्तलोग उसे अत्यन्त तुच्छ ही समझते हैं । इन सब उदाहरणोंसे भी भक्ति की ही महिमा जानी जाती है ।

श्रीशुकदेवजीने कहा था—

तस्मात् सर्वात्मना राजन्
हरिः सर्वत्र सर्वदा ।
श्रोतव्यः कीर्त्तितव्यश्च
स्मर्त्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥
(भा० २।२।३३)

अतएव हे राजन् ! सभी जीवोंके लिए सर्वान्तःकरण द्वारा सर्वदेशमें एवं सभी

समयमें भगवान् श्रीहरि ही श्रवणीय, कीर्त्तनीय एवं स्मरणीय हैं।

श्रुति-स्तवमें "इति नृगति विविच्य कवयो निगमावपनं। भवत उपासतेऽङ्घ्रिमभवं भुवि विश्वसिताः।" (भा० १०।८१।२०)—इस श्लोकका अर्थ ऐसा है—तत्वविद् व्यक्ति भगवान्की चरण-सेवाको ही जीवोंकी एकमात्र गति कहकर विचार कर निगमोक्त सर्वकर्मफलार्पण-क्षेत्र एवं संसारको दूर करनेवाले आपके पादपद्म युगलकी दृढ़ विश्वास एवं श्रद्धाके साथ सेवा करते हैं। यहाँ यह कहा गया है कि कर्मीका कर्म संन्यास तक है। कर्मीका भोग शरीर-प्राप्ति तक है। योगीका योग उसकी सिद्धि तक है। ज्ञानीका सांख्य ज्ञान उसके आत्मज्ञान तक है। ब्रह्मवादी मुमुक्षका ज्ञान मोक्ष तक है। ये सभी साधन उस उस फलविशेषकी प्राप्तिकी योग्यता देते हैं। इस प्रकार कर्मयोग-ज्ञानादिमें शास्त्रादिका व्यभिचार (दूसरा आचरण भी) है। उपाय एवं उपेयमें पार्थक्य रहनेके कारण कर्म-योग एवं ज्ञानादिका अनुष्ठान शास्त्रादिका तात्पर्य नहीं है। किन्तु अन्वय (साक्षात्) एवं व्यतिरेक (असाक्षात्) रूपसे पहले कहे गये वे सभी प्रसिद्ध माहात्म्य सर्वदा एवं सर्वत्र प्रतिपन्न होनेके कारण वे परम निगूढ़ रहस्य वस्तुके (प्रेम-भक्तिके) अंशविशेष होना ही हरिभक्तिके लिए युक्तिसंगत है। अतएव अभिधेय भगवद्भक्ति—रहस्य अर्थात् प्रयोजन-स्वरूप प्रेमभक्तिके अंश होनेके कारण ही सम्बन्ध-ज्ञान रूप दूसरे अर्थद्वारा आच्छन्न कर ही भक्तिसाधन कहा गया है।

परवर्त्ती-कालमें ब्रह्माजीने भी इस प्रकार भागवतका उपदेश देने जाकर अपने शिष्य नारदजीसे ऐसा संकल्प कराया था—

यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति।
सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय॥
(भा० २।५।५२)

जिससे अर्थात् जिस प्रकार वर्णन करनेसे वे सर्वात्मा सर्वाश्रय श्रीहरिके प्रति मानव-मात्रकी भक्ति हो, तुम मन ही मन वैसा संकल्प कर यह भागवत वर्णन करो।

श्रीनारदजीने भी वेदव्यासजीको ऐसा ही उपदेश दिया था—

अथो महाभाग भवानमोघदृक्
शुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः।
उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये
समाधिना नु स्मर तद्विचेष्टितम्॥
(भा० १।५।१३)

अतएव हे महाभाग! आप अव्यर्थ-दृष्टिसे युक्त हैं, निर्मलकीर्त्ति, सत्यनिष्ठ एवं सेवाव्रत-धारी हैं। आप जीवोंकी सभी बन्धनोंसे मुक्ति प्रदान करनेके लिए समाधिका अवलम्बन लेते हुए भगवान् त्रिविक्रमकी लीलाका अनुस्मरण करें अर्थात् स्मरण कर वर्णन करें।

त्मप्यदभ्रश्रुत विश्रुतं विभोः
समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम्।
प्रख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां
सक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा॥
(भा० १।५।४०)

हे विशालकीर्त्ति वाले (व्यासदेव) ! जिसके द्वारा पण्डितोंकी ज्ञानेच्छा समाप्त होती है, उस महानतम श्रीहरिका यश ही कीर्त्तन करो, क्योंकि तत्त्वविद् लोग जानते हैं कि नाना प्रकारके दुःखोंसे निरन्तर पीड़ित जीवोंके समस्त सन्ताप एकमात्र इस उपाय द्वारा ही शान्त होते हैं, दूसरे उपायोंसे नहीं। श्रीव्यासदेवने भी उस महापुराण प्रचार करनेके प्रारम्भमें परम कल्याण देनेवाली होनेके कारण भक्तिका ही समाधिमें अनुभव किया था। यह तत्त्व-सन्दर्भके "भक्तियोगेन मनसि" श्लोक-प्रकरणमें कहा गया है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

प्रचार-प्रसंग

श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव

गत २६ आषाढ़, १० जुलाई, सोमवारको समितिके मूलमठ और सभी शाखा मठोंमें वर्त्तमान शताब्दीको भक्ति-गंगाके एकमात्र भगीरथ स्वरूप जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्री श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव-महोत्सव हरिकीर्त्तनके माध्यमसे बड़े समारोह-पूर्वक मनाया गया है। उक्त दिवस श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा और श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सवेरे तथा शामको श्रीश्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर रचित कीर्त्तनों एवं पदावलियोंका विशेष रूपसे कीर्त्तन किया गया एवं उनकी अप्राकृत शिक्षाओं एवं अलौकिक जीवनी पर बड़े ही मार्मिक रूपसे आलोचना की गई।

श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा महोत्सव

समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप तथा शाखा मठ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुचूँड़ामें गत २७ आषाढ़, ११ जुलाई, मंगलवार से लेकर ४ श्रावण, १९ जुलाई, बुधवार तक श्रीश्रीजगन्नाथदेवजीका रथयात्रा-महोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। २७ आषाढ़को गुण्डिचा-मार्जन, ३२ आषाढ़को श्रीलक्ष्मीविजय या हेरा-पञ्चमी एवं ४ श्रावणको पूण रथ-यात्राके महोत्सव सम्पन्न हुए। श्रीधाम नवद्वीपमें उत्सवादिमें आयोजित सभाओंमें समितिके उप-सभापति पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, अन्यान्य ब्रह्मचारी एवं त्रिदण्डि संन्यासी आदियोंने भाषण, प्रवचन, कीर्त्तनादि किये। चुचूँड़ामें समितिके प्रधान सम्पादक पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम

महाराजकी अध्यक्षतामें उत्सवादिका कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। दोनों मठोंमें निमन्त्रित-अनिमन्त्रित असंख्य व्यक्तियोंको विविध प्रकारके सुस्वादु महाप्रसादका सेवन कराया गया।

श्रील सनातन गोस्वामीका तिरोभाव-महोत्सव

गत १० श्रावण, २६ जुलाई, बुधवारको श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके सम्बन्ध तत्वाचार्य, श्रीगौर-पार्षदप्रवर श्रीश्रील सनातन गोस्वामीपादका तिरोभाव-महोत्सव समितिके सभी मठोंमें परम आदर और यत्नके साथ मनाया गया है। श्रीव्रजमण्डलमें इस दिन विराट महोत्सवादि सम्पन्न होते हैं। समितिके सभी मठोंमें उक्त दिवस आयोजित विशेष सभाओंमें परमाराध्यतम श्रीश्रील सनातन गोस्वामीपाद की अप्राकृत शिक्षाओं एवं अलौकिक जीवन-चरित्र पर विशद एवं मार्मिक आलोचना की गई। इसी दिन समितिके सदस्यवर्ग चातुर्मास्यका व्रत आरम्भ करते हैं।

श्रीश्रीझूलनयात्रा-महोत्सव

पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्षभी गत ३ भाद्र, २० अगस्त, रविवार से ७ भाद्र, २४ अगस्त, वृहस्पतिवार श्रीबलदेव पूर्णिमा तक श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीका झूलन-महोत्सव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूलमठ—श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीप, शाखा मठ—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा एवं श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ, गोलोकगञ्ज, आसाममें विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया है। अन्यान्य शाखा मठोंमें भी यह उत्सव विशेष उत्साहके साथ मनाया गया है। श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें प्रतिदिन झूलन की भव्य झाँकियाँ प्रस्तुत की गई। सभामण्डप, हिंडोला, एवं श्रीमन्दिरकी सजावट नाना प्रकारके रंग-बिरंगे वस्त्र, आम्र-पल्लव, तोरण, कदली-वृक्ष एवं विद्युत्द्वारा की गई थी। प्रतिदिन तुमुल हरिसंकीर्त्तन एवं प्रवचनादि हुआ करते थे। श्रीझूलनयात्रा उत्सव इसीलिये मनाया जाता है कि जिससे हम जैसे बद्ध जीव भी श्रीराधाकृष्ण की अप्राकृत एवं चिन्मयी लीलाका सम्यक् प्रकारसे अनुशीलन कर उस लीलामें प्रवेशाधिकार प्राप्त कर सकें। उत्सवके आखिरी दिन श्रीबलदेव पूर्णिमाका उपवास एवं व्रत-उद्यापन किया गया। उक्त दिवस सबेरे एवं शामको स्वयं भगवान श्रीकृष्ण के अभिन्न प्रकाश-विग्रह श्रीबलरामजीके तत्व पर एवं उनके लीला-वैशिष्ट्य पर विशद रूपसे आलोचना की गई। विशेष रूपसे कीर्त्तन, भागवत-पाठ, भाषण आदि कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

श्रीश्रीजन्माष्टमी-व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी गत १५ भाद्र, १ सितम्बर, शुक्रवारको समितिके मूलमठ एवं सभी शाखा मठोंमें स्वयं भगवान लीला-पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका जन्माष्टमी-व्रत

उपवास, भागवत-पाठ, प्रवचन, हरिसंकीर्त्तन एवं प्रदर्शनीके माध्यमसे पालित हुआ है। मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें यह उत्सव बड़े ही समारोहपूर्वक धूमधामसे मनाया गया है। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण महाराज (समितिके वर्त्तमान उपसभापति और संयुक्त सम्पादक) की देखरेख एवं अध्यक्षतामें यह उत्सव बड़े ही सुचारु रूपसे सम्पन्न हुआ। श्रीकृष्ण-लीला प्रदर्शनी, तुमुल हरिसंकीर्त्तन, संन्यासी महोदयगण एवं ब्रह्मचारी वृंदके ओजस्वी भाषण, विभिन्न प्रकारके सुस्वादु षड्व्यञ्जनोंसे पूर्ण भोगराग इस महोत्सवके प्रमुख आकर्षण थे। शाखामठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें प्रातःकाल मङ्गलारति, श्रीगुरुवैष्णव-वंदना, कीर्त्तन एवं पाठके पश्चात् श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पारायण प्रारम्भ हुआ। श्रीपाद रंगनाथ ब्रह्मचारी, श्रीपाद रासबिहारी ब्रजवासी, श्रीपाद कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारी, श्रीश्यामकिशोर ब्रह्मचारी, श्रीभूपेन्द्रसिंह आदि वक्ताओंने इस पारायणमें योगदान दिया। पारायणके बीच-बीचमें हरिसंकीर्त्तन किया गया। सभा-मण्डपको विविध आलोक मालाओं, तोरण, पताका, रंग-बिरंगे वस्त्र, कदली वृक्ष, आम्रपल्लव, विविध प्रकारकी पुष्पमालाओं द्वारा सजाया गया। सुन्दर प्रदर्शनी-झाँकी प्रदर्शित की गई। सन्ध्याको तुमुल हरि संकीर्त्तनके योगसे आरति एवं तुलसी परिक्रमाके पश्चात् श्रीपाद कुञ्जबिहारी ब्रह्मचारीजीने प्रवचन दिया। इसके पश्चात् कुछ काल तक सुमधुर हरिकीर्त्तन हुआ। अंतमें श्रीकृष्णस्वामीदास ब्रह्मचारीने मध्यरात्रि तक प्रवचन दिया। इन वक्ताओंने श्रीकृष्ण लीलाके गूढ़ रहस्य, ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता, असमोर्द्ध्व लीला माधुरी, सर्वांशित्व आदि विषयों पर शास्त्र-सुयुक्तिपूर्ण प्रकाश डाला तथा श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी मनानेके गूढ़ तात्पर्य एवं परमावश्यकता पर विशेष जोर दिया। मध्य रात्रिमें आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी सज्जनोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। दूसरे दिन श्रीनन्दोत्सवके अवसर पर नाना प्रकारके व्यंजनयुक्त सुस्वादु सामग्री श्रीश्रीराधाविनोद बिहारीजीको अर्पण किया गया। सवेरेसे लेकर दोपहर तक भागवत-पाठ एवं हरिसंकीर्त्तनका अनुष्ठान अविरत रूपसे किया गया। भोग राग एवं मध्याह्न आरतिके पश्चात् उपस्थित सभी सज्जनोंको विविध प्रकारका सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया। उत्सवमें प्रायः दो शताधिक सज्जनोंने भाग लिया। उत्सवके सम्पन्न होनेमें मठवासी ब्रह्मचारियोंकी विशेष सेवा-प्रचेष्टा एवं उत्साह विशेष प्रशंसनीय हैं।

—निजस्व संवाददाता

—०—

श्रीश्रीचैतन्य-शिक्षामृत

सप्तम वृष्टि (सप्तम धारा)
मधुर-भक्तिरस

अधिकारी जीवोंके उपकारके लिए हम यहाँ मधुर रसकी तात्त्विक महिमा वर्णन करेंगे । मेरे द्वारा विरचित जैव-धर्मके इकतीसवें अध्यायमें इस रसके सम्बन्धमें विजय और श्रीमद् गोपालगुरु गोस्वामी का जो कथोपकथन वर्णन किया गया है, उसीका थोड़ा-सा अंश यहाँ दिया जा रहा है। दृढ़ एवं संयतचित्त होकर महात्मा पुरुष विचार कर इस रसमें प्रवृत्त हों।

विजयकुमारने कहा—"प्रभो ! मधुर-रसको मुख्य रसोंमें अत्यन्त रहस्योत्पादक रस कहा गया है। क्यों नहीं कहा जायगा, जबकि शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य रसके सभी गुण मधुर रसमें नित्य वर्त्तमान हैं ? उस उस रसमें और जो कुछ चमत्कारिताकी कमी है, वह भी मधुर रसमें सुन्दररूपसे प्रतिष्ठित है। अतएव मधुर-रस सबसे उन्नत एवं श्रेष्ठ है, इसमें और क्या सन्देह हो सकता है ? मधुर-रस निवृत्ति-पथके अवलम्बन करनेवाले ज्ञानी व्यक्तियोंकी शुष्कताके कारण उनके लिए सम्पूर्ण अनुपयोगी है। जड़-प्रवृत्ति-परायण व्यक्तियोंके लिए जड़से विलक्षण धर्म बड़ा ही दुर्बोध है। व्रजका मधुर-रस जड़-धर्मके शृङ्गार-रसकी अपेक्षा सम्पूर्ण रूपसे विलक्षण है। अतएव वह सहज ही पाया नहीं जा सकता। ऐसा अपूर्व रस किस प्रकार अत्यन्त तुच्छ एवं परित्याग करने योग्य स्त्री-पुरुषगत रसके सदृश हुआ है ?"

गुरु गोस्वामीने कहा—"विजय, यह तुम भली प्रकार जानते ही हो कि जड़में जितनी भी विचित्रतायें हैं, वे सभी ही चित्तत्त्वकी विचित्रताके प्रतिफलन हैं। जड़-जगत चिज्जगत्का प्रतिफलन है। गूढ़तत्त्व यही है कि प्रतिफलित प्रतीति स्वभावसे ही विपरीत धर्म-प्राप्त है। आदर्शमें जो सर्वोत्तम है, वह प्रतिफलनमें सर्वाधम है। आदर्शमें जो अत्यन्त निम्न प्रदेशमें है, वही प्रतिफलनमें सर्वोच्च प्रदेशमें है। दर्पणमें प्रतिफलित शरीरके अंग-प्रत्यंगका विपरीत भाव विचार करनेसे ही यह बात आसानीसे समझी जा सकती है। परम वस्तु अपनी अचिन्त्य शक्तिद्वारा उस शक्तिकी छायामें प्रतिफलित होकर जड़-सत्ता रूपमें विस्तारको प्राप्त हुई है। यह परिणाम तत्त्व मतानुसार शुद्ध है, अतएव परम वस्तुके धर्म-समूह जड़ीय सत्तामें विपरीत रूपमें देखे जाते हैं। परम वस्तुमें वर्त्तमान परम उपादेय रस उसी प्रकार जड़ जगतमें जड़ीय हेय रसके रूपमें विपरीत धर्म प्राप्त होकर प्रतिफलित है। अतएव जड़ीय रस चिन्मय रसका विपरीत प्रतिफलन है। परम वस्तुमें जो अपूर्व अद्भुत

विचित्रतागत सुख है, वही परम वस्तुका रस है। वही रस जड़में प्रतिफलित होने पर जड़बद्ध जीवकी चिन्ता द्वारा एक औपाधिक तत्त्व कल्पित होता है। ऐसी अवस्थामें निवृत्त निर्विशेष धर्मको ही परम वस्तु मानकर समस्त प्रकारकी विचित्रताओंको ही जड़-धर्म समझ बैठते हैं। इस प्रकार वे निरुपाधिक सत्ता एवं शुद्ध सत्ता धर्मको जान नहीं पाते। जो व्यक्ति जड़ीय युक्तिका सहारा लेते हैं, उनकी ऐसी गति होना स्वाभाविक है।

वास्तवमें परम वस्तु ही रसरूप तत्त्व है। उसमें अद्भुत विचित्रताएँ हैं। जड़ रसमें भी सभी विचित्रताएँ प्रतिफलित होनेके कारण जड़ रसकी विचित्रताका अवलम्बन कर अतीन्द्रिय रसका अनुभव (अनुमान) प्राप्त होता है। चिद्वस्तुमें जो रसविचित्रता है, वह इस प्रकार मीमांसित है। चिज्जगतमें अत्यन्त निम्न भागमें शान्त रसगत शान्त रस वर्त्तमान है। उसके ऊपर दास्य रस है। उसके ऊपर सख्य रस या गोलोकस्थ सख्य रस है। उससे भी ऊपर वात्सल्य रस है। गोलोकस्थ मधुर रस सबसे ऊपर वर्त्तमान है। ठीक इसी प्रकार शिवलोक या निर्गुण ब्रह्म-लोक सबसे नीचे है, उससे भी ऊपर वैकुण्ठ लोक है। वैकुण्ठ लोकके ऊपर गोलोक है। उससे भी ऊपर पित्रालय रूप नन्द-यशोदाका गृह है। सबसे ऊपर मधुर रसके आश्रय गोपगोपियोंका स्थान है।

जड़ जगतमें मधुर-रस विपरीत भाव प्राप्त कर सबसे नीचे वर्त्तमान है। उसके ऊपर वात्सल्य रस है। उससे भी ऊपर सख्य रस, सख्य रसके ऊपर दास्य रस एवं सबसे ऊपर शान्त रस है। जो लोग जड़ धर्मके स्वभाव का अवलम्बन कर रस-तत्त्वका विचार करते हैं, वे लोग इस प्रकारके सिद्धान्त कर मधुर रसको हेय (परित्याग करने योग्य), लज्जा देने वाला एवं हीन (घृणाके योग्य) समझते हैं। चिज्जगतमें यह रस शुद्ध, निर्मल एवं अद्भुतरूपसे माधुर्यपूर्ण है। चिज्जगतमें कृष्ण और उनकी विविध शक्तियोंका पुरुष-प्रकृतिके रूपमें जो सम्मिलन होता है, वह अत्यन्त पवित्र एवं तत्त्वमूलक है। जड़ जगतमें जो जड़-विश्वासपूर्ण व्यवहार है, अर्थात् स्त्री-पुरुषका जो जड़ीय सम्बन्ध है, वही समाजके लिए लज्जा प्रदान करनेवाला है। विशेषकर चिज्जगतमें कृष्ण एकमात्र पुरुष हैं एवं चित्सत्ताकी शक्तियाँ इस रसकी प्रकृतियाँ हैं। अतएव यहाँ कोई धर्मविरोध नहीं है। जड़ जगतमें कोई जीव भोक्ता है, तो कोई जीव भोग्य। वे एक दूसरेको भोग करना चाहते हैं। यह कार्य मूल-तत्त्वका विरोधी है। अतएव लज्जा एवं घृणाका विषय हुआ है। तत्त्वतः एक जीव दूसरे जीवका भोक्ता नहीं है। सभी जीव ही भोग्य हैं एवं कृष्ण ही एकमात्र भोक्ता हैं। ऐसी दशामें जीवका भोक्ता बनना नित्य धर्मका विरोधी कार्य है और यह वास्तवमें बहुत ही लज्जा एवं घृणा की बात है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आदर्श एवं प्रतिफलन विचारसे जड़ीय स्त्री-पुरुष व्यवहारमें एवं निर्मल कृष्णलीलामें–दोनोंमें सौसादृश्य (प्रायः समानता) देखा जाना स्वाभाविक एवं अवश्यंभावी है। किन्तु फिर भी एक अत्यन्त तुच्छ एवं दूसरा अत्यन्त उत्तम है।"

विजय ने कहा—"प्रभो ! यह अपूर्व विचार सुनाकर मुझे आपने कृतार्थ कर

दिया। आपके मधु-मिश्रित सिद्धान्तसे मेरा स्वतःसिद्ध विश्वास दृढ़ हो गया एवं मेरे संशय भी दूर गये। मैं अब चिज्जगतके मधुर रसकी स्थितिको समझ पाया। आहा! मधुर रस! यह शब्द जिस प्रकार मधुर है, उसी प्रकार इसका अप्राकृत भाव भी परमानन्दको देने वाला है। ऐसे अद्भुत मधुर रसके रहते हुए भी जो लोग शान्त रसमें सुख पाते हैं, उनके समान दुर्भागा और कौन हो सकता है? प्रभो! मैं अत्यन्त गोपनीय मधुर रसके बारेमें आपके पूरे विचारोंको जाननेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हूँ। आप कृपा करें।"

हे भक्त पाठक महोदय! आप तत्त्वविद् विजय कुमारकी तरह अप्राकृत सौन्दर्य समझकर इसमें विश्वासरूपी श्रद्धा करें। उसी श्रद्धाके साथ व्रज-लीलाकी जितनी आलोचना करेंगे, उतना ही आपका चित् स्वरूपगत अप्राकृत भाव स्पष्ट रूपसे उदित होगा।

गोस्वामीने विजयसे कहा—"विजय! तुम मेरी बात सुनो। कृष्ण ही मधुर रसके विषयरूप आलम्बन हैं एवं कृष्ण-वल्लभाएँ (गोपियाँ) इस रसके आश्रयरूप आलम्बन हैं। नवजलधर वर्ण, सुरम्य, मधुर, सर्व प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त, बलवान, नवयौवनयुक्त, सुवक्ता, प्रिय-भाषण करनेवाले, बुद्धिमान्, प्रतिभायुक्त, धीर, विदग्ध (रसिक), चतुर, सुखी, कृतज्ञ, दक्षिण (अनुकूल), प्रेमवश्य, गम्भीर, श्रेष्ठ, कीर्त्तिमान, रमणीजन मनोहारी, नित्य-नवीन, अतुलनीय केलि परायण, अतुलनीय सौन्दर्यशाली, अतुलनीय प्रियतम सेवकयुक्त, अतुलनीय वंशीवादनशील—कृष्ण इन गुणोंसे सर्वदा युक्त हैं। उनके चरण-कमलकी शोभाको निरखकर कामदेव का सभी अभिमान चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। उनका प्रेमपूर्ण दृष्टिपात सभीके चित्तको विमोहित कर देता है। वे ही युवतियोंके भाग्यफलरूपी दिव्य लीलाके अगाध सागर हैं। अप्राकृत रूप-गुणोंसे परिपूर्ण कृष्ण ही एकमात्र नायक हैं। भक्ति द्वारा निर्मलता प्राप्त चित्तमें दिन-रात कृष्णस्फूर्त्ति होती है। शुद्ध सत्त्व एवं मिश्र सत्त्वमें परस्पर क्या भेद है, यह जरा बतलाओ।"

विजय कुमार प्रणत होकर कहने लगे—"जिसका अस्तित्व देखा जाय, वही सत्ता है। स्थिति सत्ता, रूप-सत्ता, गुण-सत्ता, और क्रिया-सत्तासे युक्त वस्तुको सत्त्व कहा जाता है। जो सत्त्व अनादि, अनन्त एवं नित्य नवीन रूपसे वर्त्तमान है, भूत-भविष्यत् रूप खण्डकालके अधीन नहीं है और सर्वदा चमत्कारितासे परिपूर्ण है, वही शुद्ध सत्त्व है। वह शुद्ध चिच्छक्तिसे उत्पन्न हुआ है। चिच्छक्तिकी छायारूपी मायामें कालके भूत-भविष्यत् आदि विकार वर्त्तमान है। जड़ मायाधीन सत्त्व-समूहमें प्रारम्भ देखा जाता है। अतएव उनमें मायाके रजः और तमोधर्म सर्वदा वर्त्तमान हैं अर्थात् उनका अन्त भी है। ऐसे आदि और अन्तयुक्त सत्त्वको मिश्र सत्त्व कहते हैं। शुद्ध जीव भी शुद्ध सत्त्व हैं। उनके रूप, गुण, क्रिया आदि भी शुद्ध सत्त्वमय हैं। मायाबद्ध जीवके सत्त्वमें मायाके रजोगुण और तमोगुण मिले हुए हैं।"

गोस्वामी—"विजय ! तुमने बहुत ही सूक्ष्म सिद्धान्त कहा। अभी तुम यह तो बतलाओ कि जीवका हृदय किस प्रकार शुद्ध सत्त्वके द्वारा उज्ज्वल होता है ?"

विजय—"प्रभो ! जब तक जीव जड़ जगतमें बद्ध रहता है, तब तक उसका शुद्ध सत्त्व निर्मल रूपसे उदित नहीं होता। जिस परिमाणमें जीवका शुद्ध सत्त्व उदित होता है, उसी परिमाणमें जीव अपने स्वरूपका अनुभव प्राप्त करता है। किसी जड़ीय ज्ञान-चेष्टा या कर्म-चेष्टासे यह फल पाया नहीं जा सकता। यदि शरीरमें मल लगा हो, तो उस मलको दूसरे मलसे दूर नहीं किया जा सकता। जड़ कर्म स्वयं ही मल होनेके कारण वह किस प्रकार मायाके मलको दूर कर सकता है ? व्यतिरेक ज्ञान (अभेद या निर्विशेष ज्ञान) अग्निके समान है। वह मल-दूषित सत्तासे स्पर्श प्राप्त होने पर उस मूल-सत्ता तकका विनाश कर डालता है। वह किस प्रकार मल दूर होनेका सुख प्रदान कर सकता है ? इसलिए गुरु-वैष्णवोंकी कृपाद्वारा प्राप्त भक्तिसे ही शुद्ध सत्त्वका उदय होता है। शुद्ध सत्त्व ही हृदयको उज्ज्वल करता है। अभी आप यह अनुग्रह कर बतलाएँ कि नायक कितने प्रकारके हैं ?"

गोस्वामी—"विजय ! कृष्ण धीरोदात्त, धीरललित, धीरशान्त एवं धीरोद्धत—ये चार प्रकारके नायकत्वका प्रकाश करते हैं। इन चार प्रकारके नायकत्वमें वे पति और उपपति भेदसे दो प्रकारकी लीलायें करते हैं।"

विजय—"प्रभो कृष्णका पतित्व और उपपतित्व किस प्रकार है ?" गोस्वामी—"यह बहुत ही गूढ़ रहस्य है। चित्-क्रिया एक रहस्यमणि है। उसमें भी पारकीय मधुर रस कौस्तुभ मणि-विशेष है। परतत्त्वमें निर्विशेष भावकी योजना करने पर कोई रस ही नहीं रहता। 'रसो वै सः' आदि वेदवाक्य ऐसा करने पर व्यर्थ साबित होते हैं। निर्विशेष भावमें सुखका अत्यन्त अभाव होनेके कारण वह अनुपादेय (वरण करने अयोग्य) है। दूसरी ओर सविशेष भावका जितना ही प्रकाश होता है, उतना ही रसका विकास भी होता है। रसको मुख्य तत्त्व समझना होगा। निर्विशेष भावकी अपेक्षा कुछ मात्रामें सविशेष ईश्वर-भावका श्रेष्ठत्व है। शान्त रसके ईश्वर भावकी अपेक्षा दास्य रसका प्रभु भाव श्रेष्ठ है। सख्य भावमें उसकी अपेक्षा रसकी श्रेष्ठता है। वात्सल्य रस उसकी अपेक्षा और श्रेष्ठ है। मधुर रस वात्सल्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ या सभी रसोंसे बढ़कर है। जिस प्रकार इन सभी रसोंमें क्रमशः एक दूसरेकी अपेक्षा श्रेष्ठता देखी जाती है, उसी प्रकार स्वकीय मधुर रसकी अपेक्षा पारकीय मधुर रसकी अधिक श्रेष्ठता है। आत्मा और पर—ये दो तत्त्व हैं। आत्मनिष्ठ धर्मको आत्मारामता कहा जाता है। उसमें रसको अलग रूपसे सहायता न होनेके कारण उसमें रसका अभाव है। श्रीकृष्णकी आत्मारामता रूपी धर्म नित्य होने पर भी उनमें लीलारामता धर्म भी उसी प्रकार नित्य वर्त्तमान है। विरुद्ध धर्म सभी परम सामञ्जस्यके साथ उनमें नित्य वर्त्तमान हैं। यह परम पुरुष श्रीकृष्णका स्वाभाविक धर्म है। कृष्ण-तत्त्वके एक केन्द्रमें आत्मारामता

वर्त्तमान है एवं उसके विपरीत केन्द्रमें लीलारामताकी पराकाष्ठा रूप पारकीयता या श्रेष्ठता वर्त्तमान है। नायक-नायक अत्यन्त 'पर' होकर भी जब रागके द्वारा मिलित होते हैं, तब जो अद्भुत रस प्रकट होता है, वही पारकीय रस है। आत्मारामता की ओर ले जानेसे क्रमशः रसकी शुष्कता हो पड़ती है। लीलारामताकी ओर जितना ही ले जाय, उतनी ही रसकी प्रफुल्लता भी बढ़ती है। जिस स्थानमें कृष्ण ही एकमात्र नायक हैं, उस स्थानमें पारकीयता कदापि घृणाके योग्य नहीं होती। जहाँ कोई साधारण जीव नायक पदवी प्राप्त करता है, वहाँ धर्म एवं अधर्मका विचार आ जाता है। अतएव पारकीय भाव उस अवस्था अत्यन्त हेय एवं घृणाके योग्य है। पारकीय पुरुष एवं परोढ़ा रमणीके परस्पर संभाषणको भी कवियोंने अत्यन्त तुच्छ एवं परित्याज्य कहा है। श्रीरूप गोस्वामीजीने कहा है कि साधारण अलंकार-शास्त्रमें उपपतिकी जो लघुता या तुच्छता स्थिर की गई है, वह प्राकृत नायकके सम्बन्धमें ही कही गई है। रस-निर्यास आस्वादनके लिए साक्षात् अप्राकृत पुरुष भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्ध ऐसी बात कही नहीं जा सकती। जो पुरुष कन्याका पाणिग्रहण करें, वह पति है। अनुराग द्वारा उत्तेजित होकर विवाह-विधि रूप धर्मका पारकीय नायिकाकी प्राप्तिके लिए जो उल्लंघन करते हुए उनके प्रेमसर्वस्व होते हैं, उन्हें पण्डितोंने उपपति कहा है। जो स्त्री ऐहिक-पारत्रिक धर्मकी (जागतिक एवं स्वर्ग आदिके धर्मकी) उपेक्षा कर विवाह-विधिका उल्लंघन कर पर-पुरुषमें आत्मसमर्पण करती है, वह परकीया है। कन्या एवं परोढ़ाके भेदसे परकीया दो प्रकारकी हैं। पाणिग्रहण-विधि द्वारा विवाहित, पतिके आदेश प्रतिपालनमें तत्पर एवं पतिव्रता-धर्मसे अविचलित स्त्री ही स्वकीया है। कृष्णकी पुर-वनिताएँ द्वारका-पुरीकी स्त्रियाँ) स्वकीया हैं एवं व्रजवनिताएँ अधिकांश ही पारकीया हैं।"

विजय और गोपालगुरु गोस्वामीके परस्पर वार्त्तालापमेंसे स्थान स्थानमें कुछ-कुछ परित्याग कर यहाँ तक ग्रहण किया गया है।

स्वकीया एवं पारकीया कृष्ण-वनितायें अप्रकट लीलामें जिस प्रकार स्थित हैं, वही बात कही जा रही है। अप्रकट लीला गोलोकमें नित्य है। जिस प्रकार इस भौम-व्रजमें दैनन्दिन नित्यलीला होती है, उसी प्रकार गोलोकमें भी होती है। गोलोकमें जो सभी देखनेवाले हैं, वे उस लीलाको यथार्थ रूपमें ठीक-ठीक देख पाते हैं। क्योंकि वे मायातीत हैं। अतएव उनकी आँखें भी गुणातीत हैं। प्रपञ्चमें जो नित्यलीला है, वह भी उसी प्रकार है। किन्तु यहाँके दर्शनकारियों की आँखें-कान आदि मायाके गुणों द्वारा ढके रहनेके कारण कुछ दर्शनदोषसे थोड़ा सा माया-प्रत्यायित (मायिक विश्वासजनित) भाव देख पाते हैं। गोलोकमें जो पारकीय नित्य अभिमान है, वह प्रपञ्चमें वस्तुतः प्राकृतकी तरह जान पड़ता है। कृष्ण-लीलामें किसी प्रकारकी हेयता एवं जड़ता नहीं है, किन्तु गुणमय इन्द्रियोंकी हेयता एवं जड़ता हमारे लिए अवश्य होती हैं। यह तत्त्व प्रपञ्च में आये हुए गोपोंको कृष्णने दिखलाया था।

(क्रमशः)